SSJM Journal for Multi Disciplinary Streams
Volume 01, Issue 02, Apr-Jun 2026
ISSN : 3139-6321 Website : www.ssijms.com E-Mail : ssijms26@gmail.com

वैदिक साहित्य में भक्ति का स्वरूप : एक विवेचन

डॉ. श्रीकांत मिश्र

हिन्दी विभाग

स्वामी शुकदेवानन्द कॉलेज, शाहजहाँपुर

वैदिक साहित्य को श्रुति भी कहा जाता है क्योंकि ब्रह्मा ने विराट पुरुष भगवान की वेद ध्वनि को सुनकर ही प्राप्त किया है ऐसा माना जाता है इससे अतिरिक्त ऋषियों ने भी इस साहित्य को श्रवण परम्परा से ही प्राप्त किया था तथा आगे की पीढ़ियों में भी थे श्रवण द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरित होता रहा। सुनकर प्राप्त हुई इस ज्ञान परम्परा को इसीलिये श्रुति साहित्य कहा जाता है। वेदों की रचना कब हुई और उनमें किस काल की सभ्यता का वर्णन मिलता है इसको लेकर मतभेदों की कमी नहीं। इनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत रखे हैं। परन्तु यह सर्वमान्य है भारत में वैदिक काल से भक्ति के सूत्रें का मिलना प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्मदेव के मंत्र एवं रचनाएं भक्ति की सम्पोषक हैं इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह ज्ञान का निरादर करती है यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भक्ति शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताश्वेतर उपनिषद में प्राप्त होता है कुछ तार्किक लोग कहते हैं कि वेदों में तो भक्ति शब्द का उल्लेख ही नहीं है। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध श्रद्धा भक्ति का उल्लेख समीचीन है-

''भक्ति का स्थान जहाँ मानव-हृदय है- वही श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं उन्हीं को परमात्मा में अत्यन्त विशद् रूप में देखकर ही उसका मन खिचता है और वह उस विशद् रूप-विशिष्ट का सामीप्य चाहता है, उसके हृदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है, उसे वह अत्यन्त पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरुष की भावना से उसका हृदय गद्‌गद् हो जाता है, और उसका धर्म-पथ आनन्द से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार-पथ में वह अपने मतलब भर ही इश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिन्दू के हृदय की सारी शुभ और आनन्दमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती हैं, उनके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलम्ब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनन्द लेने के लिए कभी वह उसके अलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाललीला के चिन्तन से विनोद प्राप्त करता है, कभी धर्म-बलपूर्ण उनके निर्मल चरित्र का गान करता है, कभी सिर झुकाकर वन्दना करता है- यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह हृदय द्वारा अर्थात आनन्द अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने का सुगम मार्ग है। भक्ति हृदय से की जाती है। बुद्धि से भक्ति करना ऐसा ही है जैसे नाक से खाना और कान से सूंघना। हमारे यहाँ भक्ति-विधान के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, संख्य और आत्म-निवेदन ये नौ बातें ली गई हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कोरी श्रद्धा में याचकता का भाव नहीं है, जब प्रेम के साथ उसका

संयोग होता है तभी इस भाव की प्राप्ति होती है।''

मनुष्य प्रकृति के साथ रहकर उसे अपने परिवार का अंग मानकर कार्य करता रहा उनके लिए गंगा नदी न होकर माँ है तुलसी वृक्ष न होकर मातृवत है। पशु और पक्षियों में अपनी प्रियता का स्थापन कर यह मनुष्य भक्ति के बीज प्रेम और श्रद्धा के रूप में अपने जन्म काल से ही बो चुका था। सहज कृतज्ञता ने मानव के विकास में जितनी भूमिका अदा की जिससे कहीं अधिक मूल्यों की स्थापना में उसका योगदान रहा। प्रकाश देने वाले सूर्य के प्रति देवत्व का भाव प्राण वायु को पवन देव का स्वरूप मानना, अधिक क्या कहें, पृथ्वी को जननी मानने वाला यह धर्मपरायण दश न जाने कब से भक्ति के समांगों को अभिवृद्धि प्रदान कर रहा है।

माता की गोद में पयपान करने वाला यह निरीह मनुष्य जब बलिष्ठ होता है तो वह गोदुग्ध पीने के कारण गाय को भी माता का ही दर्जा देता है। आज की संस्कृति में ऐसे मूल्यों की आवश्यकता भी है जिसने हमारा पालन-पोषण किया उसको हम नगण्य मानें और अपना स्वार्थ साधन ही श्रेष्ठ मानें ऐसा भाव निश्चय ही हीनता का भाव है। कुल मिलाकर ऐसे भावों का, ऐसी स्वार्थपरता का त्याग होना चाहिए। भारतीय संस्कृति की परम्परा 'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का पालन होना चाहिए। जीवन के अति महत्वपूर्ण क्षणों को संतति के निमित्त स्वाहा कर देने वाले माता-पिता को जब यह एकाएक अकेला छोड़ देती हैं। तब मुझे लगता है कि यह संतानें राम के चरित्र को तथा श्री हरिश्चन्द्र के त्याग को शायद ही जानते हो। माता-पिता अथवा गुरू को साक्षात् ईश्वर कहा जाता है। ईश्वर की परिकल्पना भारतीय वांगमय में विशेष रूप से इन्हीं मानवीय मूल्यों को आत्मसात् करने वाली पीढ़ी को लेकर की गयी है। वेद भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। इन वेद उपनिषदों ने भारतीय समाज को बांध कर रखा है। इनके अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि जिस विराट पुरुष की परिकल्पना वेदों में की गयी है वह साक्षात् विश्व पुरुष है। इस सन्दर्भ में अर्जुन के निवेदन करने पर श्रीकृष्ण विराट स्वरूप की परिकल्पना को विधिवत् दिखाते तो हैं ही साथ ही विधिवत् समझाते भी हैं। विश्व रूप को समझने के उपरान्त अर्जुन कह उठते हैं कि-

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिंपश्यामि विश्वेश्वर विश्वरुप।।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।

बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥

कण-कण में जिस परम सत्ता का दर्शन भारतीय विद्वान वेदों, उपनिषदों में कर चुके थे उसे आज आधुनिक विज्ञान गार्ड पार्टिकल (ईश्वरीय कण) के रूप में अध्ययन कर रही है। प्राचीन मनीषा की चिन्तन धारण का सम्मान वेदों में जैसा हुआ है वैसा ही समस्त विश्व में होना चाहिए। यह मानव कल्याण का सबसे सरल साधन है। वेद उपनिषद् या अन्य ग्रन्थों में भक्ति स्पष्ट उल्लेखित न हुई हो यह बात अलग है लेकिन उनका उद्गम वेदों से ही मानना श्रेष्ठ है। वेदों में व्यक्त भक्ति के स्वरूप को लेकर अनेक चर्चायें होती रही हैं।

SSJM Journal for Multi Disciplinary Streams
Volume 01, Issue 02, Apr-Jun 2026
ISSN : 3139-6321 Website : www.ssijms.com E-Mail : ssijms26@gmail.com

भारत की उपासना पद्धति का इतिहास सेंधव सभ्यता से प्राप्त होता है इस सभ्यता में मूर्तियों की उपासना का प्रचलन देखा गया है साथ ही लिंग, योनि, स्वास्तिक चिन्ह की भी उपासना का स्वरूप दिखाई पड़ता है। मातृ देवी, त्रिमुखी क्षिव, वृक्ष तथा वृक्षों पर निवास करने वाली आत्माओं की भी उपासनाएं भी प्रचलित थी।

डॉ. जार्ज अपनी पुस्तक में लिखते हैं- ''देवी मूर्तियाँ जीवन के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करती हैं। बच्चों को स्तनपान कराने वाली स्त्री, नाभि के पास पात्र या टोकरी में कुछ पदार्थ रखकर उस पात्र को पकड़ते रहने वाली गर्भवती स्त्री आदि की मूर्तियाँ भी सेंधव सभ्यता के नष्ट शिष्टों में स्थान पाती हैं। हड़प्पा में एक स्त्री की मूर्ति ऐसी है जिसके गर्भ से वृक्ष निकल रहा है। त्रिमुख शिव या एक व्रत्तय एक वात्थ की मूर्ति योगासन में बैठी हुई है। पशुओं के बीच में रहने के कारण यह शिव का पशुपति रूप मानी जाती है। ऐतिहासिक काल में भी त्रिमुख शिव की मूर्तियाँ मिली हैं। शिव की मूर्ति का ऊर्ध्वलिंग भी है। यह इस बात का प्रमाण है कि सिन्धु सभ्यता के लोग लिंग के साथ शिव की उपासना करने की प्रथा का पालन करते थे। देवताओं के रूपों से अंकित अनेक मुद्राएं भी सिन्धु सभ्यता के नष्ट शिष्टों में मिलती हैं। शिव की मुद्रा पर उनके सामने दो साँप भी अंकित हैं। सम्भव है कि ये शिव से नागों के संबन्ध का द्योतन करते होंगे। दूसरी मुद्रा पर धनुष बाण लिये हुए शिकारी का रूप अंकित है। पुराण वस्तु विशेषज्ञों के अनुसार यह शिव का किरात रूप है। सिन्धु सभ्यता के युग में मुल्गन की पूजा प्रचलित थी। एक बकरे की बलि दिये जाने का दृश्य भी एक मुद्रा में अंकित है। यह देवताओं की प्रसन्नता के लिए होने वाली पशुबलि एवं नरबलि का प्रमाण है। आदि चढ़ाकर उनकी पूजा करने के संकेत भी नागों की मुद्राओं में पूजा के लिए दूध, भोजन अंकित हैं। लोग वृक्षों को देवी देवताओं के निवास स्थान मानते थे। अतः वृक्ष पूजा को सिन्धु सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस प्रकार मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहायता प्राप्त करने के विचार से देवताओं तथा उनकी उपासना का आयोजन होता था। शिव, मुरुगन एवं मातृदेवी की पूजा प्रमुख मानी जाती थी।''

उपासना पद्धति को देखा जाए तो यह निश्चय ही सामाजिक सरोकार रखती थी। वृक्षों की पूजा, नदियों की पूजा, पशुओं की पूजा, प्रकृति के विभिन्न उपादानों की पूजा मानव अनादि काल से करता चला आ रहा है। यह इस मनुष्य की कृतज्ञता का परिचायक है। जिस पृथ्वी से हमें अन्य वस्त्र इत्यादि प्राप्त होते हैं उसकी माता मानकर उपासना करना प्राण वायु को वायु देवता के रूप में मानना अग्नि को देव स्वरूप मानकर उपासना करना न जाने कितने ऐसे प्रकृति के स्वरूप हैं जिनकी उपासना से मनुष्य अपनी कृतज्ञता का परिचय देता रहा है मां का दुग्धपान करने के उपरांत जिस गाय का दूध मानव ने अपने लिए प्राप्त किया उसे भी गौ माता कहकर अपनी उपासना पद्धति में शामिल किया।

उपासना कृतज्ञता के अतिरिक्त और क्या है? मनुष्य ने अपने ऊपर किए गए उपकारों का धन्यवाद इसी उपासना पद्धति से दिया और देना भी चाहिए क्योंकि यह मनुष्य अन्य जीवों से भिन्न इसीलिए है क्योंकि प्रकृति को मनुष्य जितना दे सकता है उतना अन्य जीव देने में समर्थ नहीं। माता-पिता जो जीवन का करण होते हैं अर्थात हमें जन्म देते हैं उन्हें भी हम पितृ देव के रूप में अपनी उपासना पद्धति का अंग मानते हैं। इससे अधिक और क्या हो सकता है नदियों के प्रवाहित जल से संपूर्ण जीवों का पोषण होता है किसी पोषण के कारण संपूर्ण संसार आज खड़ा हुआ है इसके प्रति हमारा धन्यवाद सदैव उपासना के रूप में स्थापित रहा। वरुण देव, वायु देव, अग्नि देव न जाने कितने देवता जो हमारे जीवन में सहायक हैं उनके प्रति हमारे आभार ने उपासना का स्वरूप धारण कर लिया। प्रकृति

से लेकर ही समस्त जीव अपने जीवन का पोषण कर रहे हैं इस पोषण के परिणाम स्वरुप ही आज समाज की प्रगति का स्वरूप प्रतिबिंबित हो रहा है।

आज का मनुष्य विज्ञान सम्मत होता जा रहा है और अपने को आधुनिक मानने में आनन्दानुभूति कर रहा है। जिस मां ने जन्म दिया उसको छोड़कर अपने स्वार्थ की पूर्ति में दूर चले जाना अथवा साथ में रहकर भी उसे सम्मान न देना कितना कष्ट कारक है। जिस पिता ने अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण अपने बालक के भरण-पोषण और सुख हेतु अर्पित कर दिए उस पिता को उपेक्षित कर देना कहां की मानवता है? इसे तो पशुता ही कहा जाए तो भी अनुचित न होगा।

:: संदर्भ ::

1. चिंतामणि भाग 1 पृष्ठ 25
2. महोपनिषद्, अध्याय 6, मंत्र 71
3. श्रीमदभगवदगीता, 11/16, 23
4. जॉर्ज, डॉ. एम, भक्ति आन्दोलन और साहित्य, पृ.17।